Gyanvividha, Vol.-3; Issue-3 (July-September) 2026 : PP-11-15

ज्ञानविविधा

कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान विषयों की अंतर्राष्ट्रीय सहकर्मी समीक्षित, मूल्यांकित, त्रैमासिक शोध-पत्रिका

ISSN : 3048-4537(Online)
3049-2327(Print)
IIFS Impact Factor-6.125
Vol.-3; Issue-3 (July-Sept.) 2026
Page No.- 11-15
©2026 Gyanvividha
https://journal.gyanvividha.com

**Author's :**

**डॉ. अमित पाण्डेय**

सीनियर फैकल्टी, पार्थ एजुकेशन, प्रयागराज.

Corresponding Author :

**डॉ. अमित पाण्डेय**

सीनियर फैकल्टी, पार्थ एजुकेशन, प्रयागराज.

# आदिवासी कविता में पारिस्थितिक विमर्श

**सारांश :** समकालीन हिन्दी साहित्य में आदिवासी कविता ने प्रकृति और पर्यावरण के प्रश्न को केवल पर्यावरणीय संकट के रूप में नहीं, बल्कि मानवीय अस्तित्व और सांस्कृतिक अस्मिता के प्रश्न के रूप में प्रस्तुत किया है। आदिवासी कवियों की दृष्टि में प्रकृति कोई बाह्य वस्तु नहीं, बल्कि जीवन, संस्कृति और समुदाय का अभिन्न अंग है। इसलिए उनकी कविता पर्यावरण संरक्षण के लिए तकनीकी या वैज्ञानिक उपायों की अपेक्षा मनुष्य के भीतर प्रकृति के प्रति प्रेम, सम्मान, सह-अस्तित्व और नैतिक उत्तरदायित्व विकसित करने पर बल देती है। प्रस्तुत शोध-पत्र में आदिवासी कविता में व्यक्त पारिस्थितिक चेतना का विश्लेषण किया गया है। विशेष रुप से पार्वती तिर्की तथा जसिंता केरकेट्टा की कविताओं के आधार पर यह स्पष्ट किया गया है कि आदिवासी जीवन-दृष्टि आधुनिक विकासवादी अवधारणाओं से भिन्न एक वैकल्पिक पर्यावरणीय दर्शन प्रस्तुत करती है। यह दर्शन प्रकृति के साथ संघर्ष नहीं, बल्कि उसके साथ सहजीवन का पक्षधर है। शोध से यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि वर्तमान वैश्विक पर्यावरणीय संकट के संदर्भ में आदिवासी कविता केवल साहित्यिक अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि पर्यावरणीय नैतिकता का एक महत्त्वपूर्ण वैकल्पिक प्रतिमान भी प्रस्तुत करती है।

**मुख्य शब्द** : आदिवासी कविता, पारिस्थितिकी, पर्यावरण चेतना, प्रकृति, सह-अस्तित्व, जसिंता केरकेट्टा, पार्वती तिर्की, पर्यावरणीय नैतिकता।

**प्रस्तावना :** इक्कीसवीं शताब्दी का विश्व अभूतपूर्व पर्यावरणीय संकट का सामना कर रहा है। वैश्विक तापवृद्धि, जैव-विविधता का क्षरण, वनों का विनाश, नदियों का प्रदूषण तथा जलवायु परिवर्तन जैसी समस्याएँ सम्पूर्ण मानव सभ्यता के अस्तित्व के समक्ष गंभीर चुनौती बन चुकी हैं। विज्ञान और तकनीक इन समस्याओं के समाधान के लिए अनेक उपाय प्रस्तुत करते हैं, किन्तु इन उपायों की सफलता अंततः मनुष्य की जीवन-

दृष्टि और उसके नैतिक व्यवहार पर निर्भर करती है। जब तक मनुष्य प्रकृति को केवल उपभोग की वस्तु मानता रहेगा, तब तक पर्यावरणीय संकट का स्थायी समाधान संभव नहीं होगा।

समकालीन हिन्दी की आदिवासी कविता इसी बिन्दु पर मुख्यधारा की पर्यावरणीय चर्चाओं से भिन्न दिखाई देती है। यह कविता पर्यावरण संरक्षण को केवल वैज्ञानिक अथवा तकनीकी प्रश्न नहीं मानती, बल्कि इसे मानवीय मूल्यों, सांस्कृतिक चेतना तथा जीवन-दृष्टि का प्रश्न मानती है। आदिवासी कवियों के लिए प्रकृति जीवन का बाहरी परिवेश नहीं, बल्कि परिवार, समाज और संस्कृति का जीवंत सदस्य है। इसलिए उनकी कविताओं में पर्यावरणीय विमर्श का केन्द्र प्रकृति के साथ सह-अस्तित्व की भावना है।

आदिवासी कविता आधुनिक विकासवाद की उस मानसिकता की आलोचना करती है जिसने प्रकृति को केवल संसाधन मानकर उसके अंधाधुंध दोहन को प्रगति का पर्याय बना दिया है। इसके विपरीत आदिवासी जीवन-दृष्टि प्रकृति के साथ संतुलित संबंध स्थापित करने की प्रेरणा देती है। यही कारण है कि उनकी कविताओं में वृक्ष, नदी, पहाड़, जंगल, वर्षा और जीव-जंतु केवल प्राकृतिक उपादान नहीं हैं, बल्कि जीवित, संवेदनशील और आत्मीय अस्तित्व के रूप में उपस्थित होते हैं।

प्रस्तुत शोध-पत्र में आदिवासी कविता की इसी पारिस्थितिक चेतना का विश्लेषण किया गया है। विशेषतः यह समझने का प्रयास किया गया है कि किस प्रकार आदिवासी कवि पर्यावरण संरक्षण के लिए मनुष्य के भीतर प्रकृति के प्रति प्रेम, सम्मान और उत्तरदायित्व विकसित करने का आग्रह करते हैं तथा आधुनिक विकास मॉडल के स्थान पर एक वैकल्पिक पर्यावरणीय दृष्टि प्रस्तुत करते हैं।

**आदिवासी कविता की पारिस्थितिक दृष्टि :** हिंदी की आदिवासी कविता का पारिस्थितिक विमर्श पर्यावरण चेतना से अनुप्राणित है। यह इस बात पर केन्द्रित रहा है कि आखिर कैसे धरती को पर्यावरणीय समस्याओं से बचाया जाए? हिंदी की आदिवासी कविता में पर्यावरण संकट से बचने का जो समाधान सुझाया गया है वह है - 'प्रकृति और पर्यावरण की ओर लौटने का आह्वान।' अब यह कोई वैज्ञानिक समाधान नहीं है जैसे कि कार्बन डाईऑक्साइड का उत्सर्जन कम किया जाए; या फिर जीवाश्म ईंधनों का प्रयोग बंद किया जाए आदि। यह मूल्यपरक समाधान है। हिंदी की आदिवासी कविता की माँग है कि प्रत्येक मनुष्य अपने मूल्यों को इस तरह विकसित करे की प्रकृति उसके भीतर रच-बस जाए। वह अपने आचार-विचार इस तरह विकसित करे कि कोई पर्यावरण विरोधी कृत्य वह कर ही न सके। सुनने और पढ़ने में यह थोड़ा काल्पनिक या यूटोपिया जैसा लग सकता है परन्तु वास्तविकता यह है कि प्रकृति से लड़ते-लड़ते मनुष्य प्रकृति से इतना दूर जा चुका है कि प्रकृति के साथ रहने का कोई भी सन्देश उसे काल्पनिक ही लगेगा। लेकिन मनुष्य के प्रकृति के दूर होने से हिंदी कविता हार नहीं मानती है। वह अपने समाधान का पूरा खाका खींचती है कि किस तरह मनुष्य प्रकृति के करीब जा सकेगा।

21 वीं सदी की हिंदी कविता में प्रकृति की ओर लौटने का तीसरा और आखिरी कदम है 'प्रकृति के प्रति प्रेम, आदर और मनुष्यता का भाव रखना।' प्रकृति ही वह है जो समस्त जीवधारियों को जीवन देती है। उनका पोषण करती है। लेकिन मनुष्य को छोड़कर अन्य कोई जीवधारी प्रकृति को हानि नहीं पहुँचाता। इसलिए मनुष्य के लिए आवश्यक है कि वह अपने हृदय में प्रकृति के लिए प्रेम उत्पन्न करे। मनुष्य को यह एहसास होना चाहिए कि वह प्रकृति का ऋणी है। प्रकृति ने उससे कुछ भी नहीं लिया है, जो लिया है उसने ही प्रकृति से लिया है। अतः प्रकृति के प्रति प्रेम के साथ आदर और सम्मान का भाव भी आवश्यक है। इस सन्दर्भ में यह जान लेना आवश्यक है कि प्रकृति से प्रेम और प्रकृति के प्रति सम्मान और आदर का संदेश जिस तीव्रता के साथ हिंदी की आदिवासी कविता में अभिव्यक्त हुआ है वह गैर आदिवासी कविता में कम ही देखने को मिलता है। आदिवासी कविता जैसी तीव्रता तो उसमें नहीं ही मिलती है। प्रकृति से प्रेम और प्रकृति के प्रति सम्मान क्या होता है इसे आदिवासी कविता ही बेहतर समझाती है। उदाहरण के

लिए पार्वती तिर्की की कविता 'बंडा जेठ की बारिश' की पंक्तियाँ देखिए –

"बंडा जेठ की बारिश
शुरु हो चुकी थी
पहाड़ के पेट से
नदियों का जन्म हो रहा था
××××××
नदियों ने मछलियों को जन्म दिया
उन मछलियों के पेट में
अभी अंडे थे
जैसे धरती के पेट से
जंगल अभी खिल ही रहे थे
वे नन्हे शिशु के समान
कोमल थे
इसलिए उनके बढ़ने तक
गाँव के लोगों का
जंगल जाना वर्जित था।"[1]

स्पष्ट है कि आदिवासी नहीं चाहते कि उनके पैरों तले दबकर मछलियों के अंडे फूट जाए। कविता स्पष्ट कर देती है कि बाकी का समाज आज जिस प्रकृति की ओर लौटने की चेष्टा कर रहा है आदिवासी उसी प्रकृति से कभी अलग हुए ही नहीं। वे पहले भी प्रकृति और पर्यावरण के प्रति सचेत थे और आज भी हैं। अन्यथा सोचकर देखिए कि मछलियों के अण्डों के विषय में कौन सोचता है? किसे परवाह है कि मछलियों के अंडे फूट रहे हैं या बच रहे हैं? लेकिन आदिवासी सोचते हैं क्योंकि उनके हृदय में प्रकृति के प्रति प्रेम और सम्मान दोनो ही है। यही कारण है कि आदिवासियों के पूरे कुनबे का बरसात के मौसम में नदी की तरफ जाना वर्जित कर दिया गया है । ऐसा ही एक उदाहरण और देखा जा सकता है –

"माँ तुम सारी रात
क्यों महुए के गिरने का इन्तजार करती ही?
क्यों नहीं पेड़ से ही
सारा महुआ तोड़ लेती हो?
××××××
माँ कहती है
वे रात-भर गर्भ में रहते हैं
जन्म का जब हो जाता है समय पूरा
खुद-ब-खुद धरती पर आ गिरते हैं
भोर, ओस में जब वे भीगते हैं धरती पर
हम घर ले आते हैं उन्हें उठाकर
××××××
पेड़, जब गुजर रहा हो

सारी रात प्रसव पीड़ा से
बताओ, कैसे डाल हिला दें ज़ोर से?
बोलो, कैसे तोड़ लें हम
जबरन महुआ किसी पेड़ से?
××××××
हम सिर्फ इन्तजार करते हैं
इसलिए कि उनसे प्यार करते हैं।"[2]

जसिंता केरकेट्टा की उपर्युक्त कविता प्रकृति से प्रेम और प्रकृति के प्रति सम्मान की एक अद्वितीय कविता है। आज एक वृक्ष मात्र किसकी जिंदगी में महत्त्व रखता है? कौन सोचता है एक वृक्ष के विषय में? जहाँ एक सड़क बिछाने के नाम पर हजारों-हजार पेड़ यूँ ही गिरा दिए जाते हों; वहाँ किसे पड़ी है एक वृक्ष की? लेकिन आदिवासी समाज के लिए मात्र एक वृक्ष भी महत्त्व रखता है। जिससे कुछ भी मिलता है उन्हें, वे उसका सम्मान करते हैं। लेकिन कविता मात्र सम्मान, आदर और प्रेम से आगे जाती है। वह एक वृक्ष के प्रति मानवीय संवेदना और आत्मीयता की पराकाष्ठा का दृश्य उपस्थित करती है। एक माँ अपनी बेटी को समझा रही है कि जब मैं पीड़ा में होती हूँ तो क्या तुम मुझे तंग करती हो? ठीक उसी तरह जब वृक्ष पीड़ा के दौर से गुजर रहा है तो हम उसे कैसे झकझोर दें? कैसे जबरन उस पर अपनी इच्छा लाद दें? अगर हम उससे सिर्फ लेना ही लेना चाहेंगे तो क्या हम कृतघ्न नहीं कहलायेंगे? यदि हम उसे कुछ दे नहीं सकते हैं तो हमें उससे कुछ भी लेने का क्या हक? अतः हम जो कम से कम कर सकते हैं वह यह कि उन्हें अपना प्रेम दें। उनका आदर करें और उनके दर्द को समझें। 21 वीं शताब्दी में प्रकृति के एक लघुतम स्वरुप के प्रति ऐसी गहरी संवेदना आदिवासी कविता के बाहर दुर्लभ है। इस अर्थ में आदिवासी गैर आदिवासी समाज से बहुत आगे बढ़े हुए नजर आते हैं। उपर्युक्त कविता के सन्दर्भ में एक अन्य बात जो ध्यान देने की है वह यह कि यहाँ एक माँ अपनी बेटी को प्रकृति से प्रेम की शिक्षा दे रही है। वह उसे समझा रही है कि सिर्फ मैं या तुम नहीं प्रकृति भी हमारे परिवार का हिस्सा है और जितना प्रेम हम अपने परिवार से करते हैं, जितना हम अपने परिवार के विषय में विचार करते हैं। उतना ही प्रेम, उतना ही आदर हमारे भीतर प्रकृति के लिए भी होना चाहिए। एक माँ का अपनी बेटी को यह समझाना प्रकृति के प्रेम में पगी हुई एक नई पीढ़ी को तैयार करना है, और आज के समाज के लिए ऐसी पीढ़ी कितनी आवश्यक है यह समझाने की आवश्यकता नहीं है। यह सब कुछ आदिवासी समाज के बाहर किसानों, ग्रामीणों में कहीं मिल जाए तो मिल जाए पर शहरी समाज में तो यह विरले ही कहीं मिलेगा।

**आदिवासी समाज की पर्यावरणीय नैतिकता :** अपनी प्रकृति में विलक्षण 21 वीं सदी की हिंदी की आदिवासी कविता पर्यावरण संकट का एक अनोखा समाधान प्रस्तुत करती है। यह समाधान आदिवासी कविता के बाहर कहीं नहीं मिलेगा। आदिवासी कविता बताती है कि पर्यावरण संकट का समाधान तब स्वयं ही हो जाएगा यदि हम आधुनिक समाज के कुछ प्रतीकों को पलट दें। हिंदी की आदिवासी कविता बताती है कि विकास की अंधाधुंध दौड़ में बस दौड़ते रहना ही आधुनिकता नहीं है। यदि सिर्फ विकास करते जाना ही नियति होती तो आज पर्यावरण का ऐसा बुरा हाल न होता। यह ठीक है कि मनुष्य विकास करे, और उसे विकास करना भी चाहिए। सभ्यता विज्ञान के पथ पर अग्रसर होनी ही चाहिये। लेकिन हमें यह अवश्य पता होना चाहिए कि कहीं-कहीं थोड़ा ठहर जाना भी बहुत जरूरी होता है। यदि कहीं आगे बढ़ने से अधिक लाभ कुछ कदम पीछे हट जाने से हो तो वहाँ पीछे हट जाना ही अच्छा होता है। इस प्रकार आदिवासी कविता आधुनिकता और विकास के प्रगतिमूलक प्रतीक को थोड़ा आदिवासियत के साथ गढ़ने की बात करती है। वह बतलाती है कि यदि मनुष्य में थोड़ा सा आदिवासीपन हो तो वह स्वयं प्रकृति के कुछ करीब आ जाएगा। जसिंता केरकेट्टा की कविता 'मेरा आदिवासी होना' अपने आदिवासी होने के गर्व की कविता तो है

ही। परन्तु उससे भी आगे यह मानव जाति के लिए एक सन्देश है कि हर व्यक्ति को थोड़ा-बहुत आदिवासी बन जाना चाहिए –

"ना साड़ी, ना खोपा
ना गोदना, ना गहना
कुछ भी नहीं पहनती
फिर कैसी आदिवासी हो तुम?
××××××
अक्सर लोग पूछते हैं मुझसे
पर मैं उनसे कहना चाहती हूँ
धरती के करीब रहना ही आदिवासी होना है
प्रकृति के साथ चलना ही आदिवासी होना है
नदी की तरह बहना
और सहज रहना ही आदिवासी होना है
भीतर और बाहर हर बंधन के खिलाफ
लड़ना ही आदिवासी होना है
और अपने सुन्दर होने के सारे चिन्हों के साथ
ज्यादा मनुष्य होना ही आदिवासी होना है"[3]

निःसंदेह आज के मनुष्य को आवश्यकता है कि वह थोड़ा सा आदिवासीपन अपने भीतर ले आए। यही कारण है कि हमें आधुनिकता के बने-बनाए प्रतिमान तोड़ने होंगे। साथ ही समझना होगा कि आदिवासी होना कोई पिछड़ी हुई प्रजाति होना नहीं है बल्कि आज के समय की आवश्यकता है। आदिवासी कविता का यह समाधान शायद कुछ आलोचकों को ठीक न लगे परंतु उससे कोई बहुत फर्क नहीं पड़ता है। यदि आज पृथ्वी को बचाने के लिए, प्रकृति को बचाने के लिए और अपने अस्तित्व को बचाने के लिए थोड़ी आलोचना का सामना करना पड़ता है, थोड़ा स्वघोषित विकास के रास्ते से अलग जाना पड़ता है तो उसमें कोई बुराई नहीं है।

**आदिवासी कविता का वैश्विक महत्त्व :** आदिवासी कविता का महत्त्व केवल हिन्दी साहित्य तक सीमित नहीं है। यह वैश्विक पर्यावरणीय विमर्श में भी अपनी विशिष्ट भूमिका का निर्वाह करती है। जहाँ पश्चिमी पर्यावरणवाद मुख्यतः वैज्ञानिक और नीतिगत उपायों पर बल देता है, वहीं आदिवासी कविता प्रकृति और मनुष्य के भावनात्मक एवं नैतिक संबंध को पुनर्स्थापित करने का प्रयास करती है।

वस्तुतः पर्यावरणीय संकट का सबसे बड़ा कारण मनुष्य का प्रकृति से भावनात्मक विच्छेद है। आदिवासी कविता इसी टूटे हुए संबंध को पुनः स्थापित करने का प्रयास करती है। इसलिए इसकी पारिस्थितिक दृष्टि केवल साहित्यिक सौन्दर्य का विषय नहीं, बल्कि समकालीन मानव सभ्यता के भविष्य से जुड़ा हुआ प्रश्न है।

**सन्दर्भ सूची :**

1. पार्वती तिर्की; फिर उगना; राधाकृष्ण पेपरबैक्स; पहला संस्करण – 2023; पृष्ठ संख्या – 53
2. जसिंता केरकेट्टा; ईश्वर और बाज़ार; राजकमल प्रकाशन; पहला संस्करण – 2022; पृष्ठ संख्या – 141
3. जसिंता केरकेट्टा; ईश्वर और बाज़ार; राजकमल प्रकाशन; पहला संस्करण – 2022; पृष्ठ संख्या – 167

•